प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् क्या मिथ्यात्व की प्राप्ति अनिवार्य है?

धवल पुस्तक 6 में सम्यक्त्व-उत्पत्ति चूलिका में प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के प्रकरण के अंतर्गत पृष्ठ २४२ में यह गाथा आई है, जिसका हिंदी अनुवाद भी वहीँ इस प्रकार दिया है:

सम्मत्तपढमलंभस्सणंतरं पच्छदो य मिच्छत्तं ।
लंभस्स अपढमस्स दु भजिदव्वं पच्छदो होदि ॥१२॥

अर्थ: अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके जो सम्यक्त्वका प्रथम वार लाभ होता है उसके अनन्तर पश्चात् मिथ्यात्वका उदय होता है । किन्तु सादि मिथ्यादृष्टि जीवके जो सम्यक्त्वका. अप्रथम, अर्थात् दूसरी, तीसरी आदि वार लाभ होता है, उसके अनन्तर पश्चात् समयमें मिथ्यात्व भजितव्य है, अर्थात् वह कदाचित् मिथ्यादृष्टि होकर वेदक अथवा उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होता है और कदाचित् सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है ॥१२॥

इससे यह ज्ञात होता है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पश्चात् मिथ्यात्व का उदय अनिवार्य है । इसी से अनेक विद्वान् यह मानते हैं कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पश्चात जीव मिथ्यात्व में जायेगा ही जायेगा ।

इसी विषय का विचार इस लेख में प्रकृत है ।

अब यह हम देखें कि यह गाथा धवल में उद्धृत है याने यह इस ग्रन्थ की मूल गाथा नहीं है । तो यह गाथा किस ग्रन्थ की मूल गाथा है? यह कषायपाहुड ग्रन्थ की मूल गाथा है जो जयधवल में पुस्तक १२ में कही गयी है ।

वहां यह गाथा, टीका और अर्थ इस प्रकार है : जयधवल पुस्तक १२, पृष्ठ ३१७

(५२) सम्मत्तपढमलंभस्साणंतरं पच्छदो य मिच्छत्तं ।
लंभस्स अपढमस्स दु भजियव्वो पच्छदो होदि ॥१०५॥

$२०६. एसा गाहा सम्मत्तं गेण्हमाणस्साणंतरं पच्छदो मिच्छत्तोदयणियमो किमत्थि आहो णत्थि त्ति पुच्छाए णिण्णयकरणट्ठमागया। एदिस्से अत्थो उच्चदे । तं जहा–सम्मत्तस्स जो पढमलंभो अणादियमिच्छाइट्ठिविसओ तस्साणंतरं पच्छदो अणंतरपच्छिमावत्थाए मिच्छत्तमेव होइ, तत्थ जाव पढमट्ठिदिचरिमसमओ त्ति ताव मिच्छत्तोदयं मोत्तूण पयारंतरासंभवादो। 'लंभस्स अपढमस्स दु' जो खलु अपढमो सम्मत्तपडिलंभो तस्स पच्छदो मिच्छत्तोदयो भजियव्वो होइ। सिया मिच्छाइट्ठी होदूण वेदयसम्मत्तमुवसमसम्मत्तं वा पडिवज्जइ, सिया सम्मामिच्छाइट्ठी होदूण वेदयसम्मत्तं पडिवज्जइ त्ति भावत्थो।

गाथार्थ: सम्यक्त्वके प्रथम लाभके अनन्तर पूर्व पिछले समयमें मिथ्यात्व ही होता है । अप्रथम लाभके अनन्तर पूर्व पिछले समयमें मिथ्यात्व भजनीय है ॥११-१०५॥

टीकार्थ: २०६. **यह गाथा सम्यक्त्वको ग्रहण करनेवाले जीवके अनन्तर पूर्व पिछले समयमें क्या मिथ्यात्वका उदय है अथवा नहीं है ऐसी पृच्छा होने पर उसका निर्णय करनेके लिए आई है ।** अब इसका अर्थ कहते हैं । यथा-अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्वका जो प्रथम लाभ होता है उसके 'अणंतरं पच्छदों' अर्थात् अनन्तरपूर्व पिछली अवस्था में मिथ्यात्व ही होता है, क्योंकि उसके प्रथम स्थितिका अन्तिम समय प्राप्त होने तक मिथ्यात्वके उदयको छोड़ कर प्रकारान्तर सम्भव नहीं है। 'लंभस्स अपढमस्स दु' अर्थात् जो नियमसे अप्रथम अर्थात् द्वितीयादि बार सम्यक्त्वका लाभ है उसके अनन्तरपूर्व पिछली अवस्थामें मिथ्यात्वका उदय भजनीय है। कदाचित् मिथ्यादृष्टि होकर वेदकसम्यक्त्व या उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है और कदाचित् सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है यह उक्त गाथासूत्रका भावार्थ है।

उपर्युक्त अर्थ गाथा, टीका पढ़कर आपको स्पष्ट हो गया होगा कि यह गाथा प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होने के पश्चात् मिथ्यात्व के उदय की क्या स्थिति होती है, उसके निर्णय के लिए नहीं है; वरन प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व जीव के मिथ्यात्व के उदय की क्या स्थिति है, उसके निर्णय के लिए है । याने पूरा अर्थ ही बदल गया है । इस एक **पश्चात्/पूर्व** शब्द के बदल जाने से पूरा प्रकरण ही बदल जाता है । हिंदी अनुवादक ने सम्यक्त्व के बाद मिथ्यात्व का उदय प्रकरण समझ कर अर्थ किया तो अर्थ यह निकल कर आया कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पश्चात् नियम से मिथ्यात्व का उदय होगा ही; जबकि गाथा में आचार्य भगवान् को 'प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पूर्व में मिथ्यात्व की क्या दशा है' – यह बताना है ।

आप ध्यान दें कि धवल पुस्तक 6 में जो गाथा का अर्थ कहा है, वह वीरसेन स्वामी द्वारा नहीं कहा गया है बल्कि हिंदी अनुवादक ने उसका अर्थ किया है । हिंदी अर्थ करते समय वहां भूल हो गयी है । अनुवादक ने गाथा में आये **'पच्छदो'** शब्द का अर्थ **'पश्चात्'** किया है, जिसके कारण उन्होंने अर्थ किया है — सम्यक्त्व की प्राप्ति के पश्चात् मिथ्यात्व का उदय । लेकिन वीरसेन स्वामी ने इसका अर्थ किया है कि 'अनंतर पश्चिम दशा याने अनंतर पूर्व दशा' । तो अर्थ निकलता है कि सम्यक्त्व की प्राप्ति के पूर्व मिथ्यात्व का उदय । उस दशा का विचार इस गाथा में किया है । ध्यान रहे यह अर्थ हम नहीं निकाल रहे हैं। यह वीरसेन स्वामी ने स्वयं उपर्युक्त टीका में सम्पूर्ण रूप से किया है । कषायपाहुड

की उपर्युक्त टीका देखने से आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि धवल पुस्तक 6 का यह अनुवाद भ्रम में डालने वाला है, उसे संशोधन की आवश्यकता है ।

लेकिन **पच्छ** शब्द का अर्थ तो पश्चात् होना चाहिए? – ऐसा प्रश्न हो सकता है। परन्तु इस प्रश्न को अवकाश ही कहाँ रह जाता है जब आद्य टीकाकार वीरसेन स्वामी उसका स्पष्ट अर्थ **'पूर्व'** कर रहे हैं। क्या हम वीरसेन स्वामी के बताये अर्थ पर प्रश्नचिह्न लगाना चाहते हैं!! और फिर **पच्छ** का अर्थ पश्चात् नहीं है, पूर्व ही है – इसे जयधवल के संपादक ने इसी टीका के बाद विशेषार्थ में और स्पष्ट किया है जो इस प्रकार है:

विशेषार्थ - इस गाथासूत्रमें जो अनादि मिथ्यादृष्टि जीव पहली बार सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके सम्यक्त्वको प्राप्त करनेके अनन्तरपूर्व पिछली अवस्थामें कौनसा भाव होता है तथा जो सादि मिथ्यादृष्टि द्वितीयादि बार सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके सम्यक्त्वको प्राप्त करने के अनन्तर पूर्व पिछली अवस्था में कौनसा भाव होता है इसका विधान किया गया है । गाथा पूर्वार्ध में 'अणंतरं पच्छदो' पाठ आया है तथा उत्तरार्ध में मात्र 'पच्छदो' शब्द आया है । इनमें से 'अणंतरं' पाठ तो ऐसा है जिसे अन्य पदके साथ विवक्षित भावसे आगेके भावको सूचित करनेके लिये भी लागू किया जा सकता है और अन्य पदके साथ विवक्षित भावसे पिछले भावको सूचित करनेके लिये भी लागू किया जा सकता है। जैसे 'अनन्तर पिछला' कहने से अव्यवहित पूर्व पिछले भावका ग्रहण होता है और 'अनन्तर उत्तर' कहनेसे अव्यवहित उत्तर भावका ग्रहण होता है । 'अनन्तर' पद स्वयं न तो पिछले भावको सूचित करता है और न ही उत्तर भावको । अतः प्रकृतमें 'पच्छदो' पाठका क्या अर्थ है इसका आगममें प्रयुक्त हुए 'पच्छ' तथा 'पच्छिम' शब्दोंका वहाँ जो अर्थ लिया गया है उसे ध्यानमें रख कर विचार होना चाहिए | इसके लिये सर्व प्रथम हम तीन आनुपूर्वियोंको लेते हैं। इनमें एक 'पच्छाणुपुव्वी' भी है । इस द्वारा गणना करनेपर अन्तिम भावसे गणनाक्रमसे पिछले भाव लिये जाते हैं । यहाँ 'पच्छ' शब्द गणनाक्रम से आगेके भावोंकी अपेक्षा पिछले भावोंको सूचित करता है । उसी प्रकार प्रकृतमें भी 'अणंतरं पच्छदो' का अर्थ करने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्वसे अव्यवहितपूर्व पिछले भावका ही ग्रहण होगा। इससे यह अर्थ सुतरां फलित हो जाता है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व से अव्यवहित पूर्व पिछले समय में एकमात्र मिथ्यात्व भाव ही होता है । **प्रथमोपशमके बाद कौन भाव होता है इसका सूचन करना इस गाथाका तात्पर्य नहीं है । इसका सूचन गाथा क्रमांक १०३ में पहले ही सूत्रकार कर आये हैं ।** तथा 'पच्छिम' शब्दको ध्यान में रख कर विचार करने पर भी यही अर्थ फलित होता है । उदाहरणार्थ जयधवला पु० ६ पृ० १६७ और २८३ के चूर्णिसूत्रों पर दृष्टिपात करनेसे विदित होता है कि उन सूत्रोंमें 'अन्तिम' अर्थको सूचित करनेके लिये 'अपच्छिम' शब्दका प्रयोग हुआ है, 'पच्छिम'

शब्दका नहीं। स्पष्ट है कि 'पच्छिम' शब्द विवक्षित भावसे पिछले भावको ही सूचित करता है। उक्त गाथामें आये हुए 'पच्छदो' शब्दका भी यही आशय लेना चाहिए। शेष कथन सुगम है ।

धवल में किया गया हिंदी अनुवाद ना केवल गलत है, बल्कि आगम विरुद्ध भी हो जाता है । धवल में किये गए अर्थ के अनुसार प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के पश्चात् नियम से मिथ्यात्व का उदय आता है, जबकि ऐसा नियम नहीं है । प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के पश्चात् दर्शन मोह की 3 प्रकृतियों में से किसी एक प्रकृति का उदय भजनीय है । अर्थात् मिथ्यात्व का ही उदय होगा, ऐसा नियम नहीं है । इसके लिए देखें: **लब्धिसार गाथा १०४**

अथ दर्शन मोहांतरपूरणविधानांतरमाह —
उवसमसम्मत्तुवरिं दंसणमोहं तुरंत पूरेदि ।
उदयल्लिस्सुदयादो सेसाणं उदयबाहिरदो ॥ १०३ ॥
ओक्कट्टिदइगिभागं समपट्टीए विसेसहीणकमं ।
सेसासंखाभागे विसेसहीणेण खिवदि सव्वत्थ ॥१०४॥
सं०टी०-....प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालं परिसमाप्यानंतरसमये तिसृणां दर्शनमोहप्रकृतीनां मध्ये या प्रकृतिरुदययोग्या भवति तत्प्रति द्रव्यं द्वितीयस्थितौ स्थितमपकृष्य उदयावल्यां तद्बाह्यांतरायामे द्वितीयस्थितौ च निक्षिपति । उदयायोग्ययोः शेषप्रकृत्योर्द्रव्यमपकृष्य उदयावलिबाह्यांतरायामद्वितीयस्थित्योरेव निक्षिपति ।.....

अब दर्शन मोह एक अंतर को पूरण करने की विधि कहते हैं।
अन्वयार्थ- (ओक्कट्टिदइगिभागं) अपकृष्ट द्रव्य का एक भाग (समपट्टीए) समपट्टिकारूप से (विसेसहीणकमं) विशेष (चय) हीनक्रम से (खिवदि) (उदयावलि में) देता है। (सेसासंखाभागे) शेष रहा असंख्यात बहुभाग (सव्वत्थ) सर्वत्र (विसेसहीणेण) चयहीन क्रम से (खिवदि) देता है ।।१०४।।
टीकार्थ- ...प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त होने के अनन्तर समय में दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों में से जो प्रकृति उदययोग्य है उस प्रकृति का द्वितीय स्थिति में स्थित द्रव्य का अपकर्षण करके उदयावली में, उसके बाहर अंतरायाम में और द्वितीय स्थिति में निक्षेपण करता है । उदय के अयोग्य शेष दो प्रकृतियों के द्रव्य का अपकर्षण करके उदयावली के बाहर अंतरायाम और द्वितीय स्थिति में ही निक्षेपण करता है। ....

इसके अलावा **जयधवल पुस्तक १२, पेज ३१४, गाथा १०३** में मूल गाथा और टीका में इस प्रकरण को कहा है:

(५०) अंतोमुहुत्तमद्धं सव्वोवसमेण होइ उवसंतो।
तत्तो परमुदयो खलु तिण्णेक्कदरस्स कम्मस्स ॥१०३॥

टीका: ... 'तत्तो परमुदयो खलु' **ततः परं दर्शनमोहभेदानां त्रयाणां कर्मणामन्यतमस्य नियमेनोदयपरिप्राप्तिरित्युक्तं भवति** । तदो उवसंतद्धाए खीणाए तिण्हं कम्माणमण्णदरं जं वेदेदि तमोकड्डियूणुदयावलियं पवेसेदि, असंखेज्जलोगपडिभागेण उदयावलियबाहिरे च एगगोवुच्छसेढीए णिक्खेवं करेइ । सेसाणं च दोण्हं कम्माणमुदयावलियबाहिरे एगगोवुच्छायारेण णिक्खेवं करेइ । एवं तिण्हमण्णदरस्स कम्मस्स उदयपरिणामेण मिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी वेदयसम्माइट्ठी वा होदि त्ति एसो गाहापच्छद्धे सुत्तत्थसमुच्चओ।

गाथार्थ: सभी दर्शनमोहनीय कर्मोंका उदयाभावरूप उपशम होनेसे वे अन्तर्मुहूर्त काल तक उपशान्त रहते हैं। उसके बाद तीनोंमेंसे किसी एक कर्मका नियमसे उदय होता है ॥९-१०३॥

टीकार्थ: ..... 'तत्तो परमुदयो खलु' अर्थात् **उसके बाद दर्शनमोहके भेदरूप तीनों कर्मोंमेंसे किसी एकके नियमसे उदयकी प्राप्ति होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।** उसके बाद उपशान्त कालके क्षीण होने पर तीनों कर्मोंमेंसे अन्यतर जिस कर्मका वेदन करता है उसको अपकर्षण कर उदयावलिमें प्रविष्ट करता है तथा असंख्यात लोकके प्रतिभागरूपसे उदयावलिके बाहर एक गोपुच्छाकार पंक्तिरूपसे निक्षेप करता है। तथा शेष दोनों कर्मोंका उदयावलिके बाहर एक गोपुच्छाकाररूपसे निक्षेप करता है । इस प्रकार तीनोंमेंसे किसी एक कर्मका उदयपरिणाम होनेसे मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि या वेदकसम्यग्दृष्टि होता है इस प्रकार यह गाथाका उत्तरार्धसम्बन्धी सूत्रके अर्थका समुच्चय है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि **प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के पश्चात् जीव मिथ्यात्व में ही जाए ऐसा नियम नहीं है ।**

ऐसा भी नहीं है कि सादि मिथ्यादृष्टि के तीनों प्रकृतियों में से किसी एक उदय हो सकता है और अनादि मिथ्यादृष्टि के सम्यक्त्व प्राप्त करने के पश्चात् नियम से मिथ्यात्व का उदय होता है । क्योंकि इन सभी गाथाओं, टीकाओं में सादि/अनादि मिथ्यादृष्टि का भेद नहीं कहा है । सादि/अनादि का कथन धवल अनुवादक ने गाथा का अर्थ बैठाने के लिए किया है जो जयधवल के अनुसार उपयुक्त नहीं है । इसी को और अत्यंत स्पष्ट शब्दों में धवल पुस्तक 7 में वेदक सम्यक्त्व के अंतरकाल को बताते समय कहा है जो इस प्रकार है:

धवल पुस्तक 7, पृष्ठ 232

सूत्र: उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥१३५॥

सूत्रार्थ: उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥१३५॥

टीका: कुदो ? अणादियमिच्छादिट्ठिस्स अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए सम्मत्तं घेत्तूण अंतोमुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूणुवड्ढपोग्गलपरियट्टमंतरिय अवसाणे सम्मत्तं संजमं च जुगवं घेत्तूणंतरं समाणिय अंतोमुहुत्तेण अंबंधगत्तं गदस्स उवड्ढपोग्गलपरियट्टंतरुवलंभादो । एवं वेदगसम्माइट्ठिस्स वि वत्तव्वं । **णवरि अणादियमिच्छादिट्ठी उवसमसम्मत्तं घेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो वेदगसम्मत्तं घेत्तूण तत्थ वि अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो मिच्छत्तेण अंतरिदो त्ति वत्तव्वं ।** अवसाणे वि उवसमसम्मत्तादो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए अंतरं समाणदेव्वं ।....

टीकार्थ: क्योंकि, अनादिमिथ्यादृष्टिके अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें सम्यक्त्वको ग्रहण कर और उसके साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त होने पर उपार्ध अर्थात् कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तरको प्राप्त हो अन्तमें सम्यक्त्व एवं संयमको एक साथ ग्रहण कर अन्तर को समाप्त करते हुए अन्तर्मुहूर्तसे अबन्धकत्वको प्राप्त होने पर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र अन्तर प्राप्त होता है। **इसी प्रकार वेदक सम्यग्दृष्टिका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिये । विशेष इतना है कि अनादिमिथ्यादृष्टि उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कर और उसके साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर <u>पुनः वेदकसम्यक्त्वको ग्रहणकर</u> और वहां भी अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः मिथ्यात्वसे अन्तरित होता है, इस प्रकार कहना चाहिये** । अन्त में भी उपशमसम्यक्त्वसे वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होने के प्रथम समयमें अन्तरको समाप्त करना चाहिये ।

यहाँ वेदक सम्यक्त्व का उत्कृष्ट अंतर बताते समय कहा है कि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ने प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया, उसके पश्चात् वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त किया । सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् वह मिथ्यात्व में गया । यहाँ से अंतर प्रारंभ करना है । फिर वह अर्धपुद्गल परिवर्तन काल पश्चात् पुनः उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करके, वेदक सम्यक्त्व प्राप्त करता है । तब वेदक सम्यक्त्व का उत्कृष्ट अंतर काल आता है । "अनादि मिथ्यादृष्टि ने प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करके वेदक सम्यक्त्व प्राप्त किया, वह मिथ्यात्व में नहीं गया" – इससे ज्ञात होता है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पश्चात् नियम से मिथ्यात्व में जाता ही है – ऐसा नहीं है।

इस प्रकार धवल पुस्तक 6 में उद्धृत गाथा का समीचीन अर्थ वह है जो मूल टीकाकार आचार्य वीरसेन स्वामी द्वारा किया गया है । इस संदर्भ में अपनी पूर्व धारणाओं को सम्यक् कर लेना चाहिए । धवल के इस अनुवादरूप अर्थ के अतिरिक्त किसी भी ग्रंथ में ऐसा नहीं कहा है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पश्चात् नियम से मिथ्यात्व होता ही है ।

इस भ्रान्ति के लंबे समय से चले आने का और भी कारण है कि धवल पुस्तक 6 का प्रकाशन 1943 में प्रथम बार हुआ था और इसका अध्ययन तब से ही चला आ रहा है । जबकि जयधवल पुस्तक 12 का प्रकाशन 1971 में प्रथम बार हुआ । इन 28 वर्षों के लंबे अंतराल में धवल पुस्तक में प्रकाशित अर्थ विद्वानों के चित्त में बैठ गया और जयधवल में कहे गए समीचीन अर्थ की तरफ ध्यान भी नहीं गया । किसी का ध्यान गया भी, तो '**आचार्यों के अनेक मत हैं**' इस प्रकार के उत्तर लेकर संतोष कर लिया गया । लेकिन आप ध्यान दें इस बारे में आचार्यों के 2 मत हैं ही नहीं। इस विषय के अधिकारी विद्वान आचार्य श्रीवीरसेन स्वामी ने इसका एक ही अर्थ किया है । अब यदि हम धवल में प्रकाशित गलत अर्थ को लेकर 2 मत बनाना चाहें तो बनेंगे; अन्यथा आगम तो एक ही प्रकार से विषय को कह रहा है ।

आशा है इस विषय पर विद्वान विचार करके अपनी पूर्व मान्यता में सुधार करेंगे । इस लेख में कुछ सुधार की आवश्यकता हो तो कृपया सूचित करें ।

- विकास जैन (छाबड़ा), इंदौर

70006-76108 vikasnd@gmail.com

30-7-2023